यह हुई पति-युता
विश्वावसु की प्रणाम-
उठो चलो दूर चलो
-स्तुति द्वारा वन्दना ॥२१॥

पितृ-गृह-वासिनी अलङ्कृत कुमारी को
उठो चलो विश्वावसु देव ! नमस्कार तुम्हें
ढूंढो, वह जानो है जन्म से तुम्हारा भाग
कन्या विपुलजघना अन्या को ढूंढो, पति-हित छोड़ो पत्नी को ॥२२॥

पथ होंवे सरल और निष्कण्टक जिनसे मित्र
साथ-साथ ले चलें हमें अर्चना औ भग
हमारे अपनी वधुओं के घर जायें
हे देवों ! पत्नी-पति का संगम सुखकर हो ॥२३॥

वरुण-पाश से तुम्हें मुक्त करता मैं, जिससे
ऋत-स्थान में सुकृत-लोक में तुम्हें पति से
वरुण सवितृ-देव तुम्हें बांधे थे अब तक
युक्त बिना अड़चन-बाधा के करता हूँ मैं ॥२४॥

मुक्त करता मैं यहाँ से हूँ उसे
भूमयुत हे इन्द्र ! यह ताकि बने
न कि वहां से कि जहां करता सुबद्ध
सुष्ठु-पुत्रा और अच्छी भाग्य-शील ॥२५॥

हाथ पकड़े और पूषा ले चले
घर [illegible]लो गृहिणी बनो, तुम स्वामिनी
अश्विनी रथ में तुम्हें ले जाये अब
अब तुम्हीं सम्बोधना गृह-गोष्ठियाँ ॥२६॥

स्नेह स[illegible]ति पर बढ़े तेरा, यहाँ
इस पति [illegible]देह दे अपनी मिला
स्वामिनी तुम गृहस्थ में हो जागरूक
साथ दोनों वृद्ध होकर गोष्ठियाँ सम्बोधना ॥२७॥

नील रक्त कृत्या की
बन्धु-वर्ग बढ़ा और
आसक्ति इससे हटी
पति बंधा बन्धन में ॥२८॥

देहमलिन वस्त्र छोड़
कृत्या पदधार घुसी
ब्राह्मण को सम्पद्द दे
पत्नी बन पति-मने में ॥२९॥

देह हतप्रभ होती
पति वधू-वस्त्रों से
पापिन की छाया से
अंग चाहता ढांपे ॥३०॥

स्वर्णिम वधू-यात्रा के
लगे, उन्हें यज्ञ-देव
पीछे जो यक्ष्मादि
वापिस ले जाये वहीं ॥३१॥

दम्पती के पीछे लगे
सरल मार्ग से दुष्कर
चोर उसे पा न सके
पार करें, शत्रु भगें ॥३२॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन ॥३३॥

तृष्टमेतत् कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन् त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥

वधू यह मंगलमयी
वितरित सौभाग्य करें
आयें, सब देखें इसे
लौटें अपने निवास ॥३३॥

यह तीखा कड़वा है
सूर्या का विज्ञाता
ज्वलित विषयुक्त सा
ब्रह्मा वधू-वस्त्र-योग्य ॥३४॥

किनारी-वस्त्र शिरोवस्त्र
रूप देख सूर्या के
वस्त्र 'कटे छंटे
वस्त्र ब्रह्मा उतारता ॥३५॥

तेरा सौभाग्यहेतु हाथ लेता हूँ मैं
अर्यमा, सविता, पुरन्धि, भग देवों ने
साथ मुझ पति के प्राप्त वृद्धावस्था को हो
गृह-पतित्व के हेतु दिया है तुझे मुझे ॥३६॥

पूषन् ! इस शिवतमा पत्नी को प्रेरित कर
गोद का हमारी यह प्रेम-वश सहारा ले
जिसमें मनुष्य प्राण-बीज को बोते हैं
इससे हम प्रेम-वश सुरत-क्रीड़ा करें ॥३७॥

तुम्हें प्रथम दिया
अग्ने ! फिर सन्तति-युत
अलंकरण-सहित सूर्या को
पत्नी दो पति के प्रति ॥३८॥

अग्नि ने आयु-तेज-
इसका पति दीर्घायु
-सहित दी पत्नी फिर
जिये शत संवत्सर ॥३९॥

प्रथम सोम ने पाया
अग्नि पति था तृतीय
पुनः गन्धर्व ने
चौथा मनुष्य-पुत्र ॥४०॥

सोम ने गन्धर्व को
अग्नि ने धन और
गन्धर्व ने दी अग्नि को
पुत्रों के सहित दे दी मुझे ॥४१॥

तुम यहीं रहना बिछुड़ना मत कभी
पुत्र पौत्रों बीच उनसे खेलते
पूर्ण आयु नित्य रहना साथ साथ
निज निवास स्थान में दोनों प्रसन्न ॥४२॥

दे प्रजापति हमें सन्तति, अर्यमा
तुम अमंगल से रहित पतिगृह चलो
साथ रक्खें वृद्ध-आयु तक हमें
सुख द्विपादों चतुष्पादों हेतु दो ॥४३॥

हो न दृष्टि चण्ड, न पति के विरुद्ध
वीर-जननी देव-पूजक सुखप्रदा
पशु-प्रेमी, करुण, कीर्त्तिशालिनी
सुख द्विपादों चतुष्पादों हेतु दो ॥४४॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥

इन्द्र ! मघवन् ! तुम इसे सौभाग्य और सपूत दो
पुत्र देना दस इसे करना पति को ग्यारवां ॥४५॥

सास की रानी बनो रानी ससुर की भी बनो
रानी बनो देवर जनों की ननद की रानी बनो ॥४६॥

देव सारे, देव जल, और मातरिश्वा, धातृदेव शारदा दात्री हमारे दें हृदय-द्वय को मिला ॥४७॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ ६ ॥

सहस्र-भाल सहस्र-नेत्र
सब ओर से भू घेर कर
सहस्र-पाद पुरुष हुआ
अतिक्रान्त दशअंगुल किया ॥१॥

सब ही पुरुष है जो विगत
वह ईश है अमरत्व का
है और जो भावी पुनः
जो अन्नहित बढ़ता अति ॥२॥

महिमा पुरुष की है यही
एक पाद उसका सर्व जग
इससे बड़ा है वह स्वयम्
अमर त्रिपाद स्वर्ग में ॥३॥

ऊर्ध्वंग त्रिपाद पुरुष हुआ
वह व्याप्त चारों ओर है
एक पाद है उसका यहाँ
साहार विगताहार में ॥४॥

उससे विराट् उत्पन्न है
उत्पन्न हो प्रकटित हुआ
उत्पन्न पुरुष विराट् से
फिर सृष्ट की भू और पुर ॥५॥

लेकर पुरुष-हवि देव-
उसमें बनी घृत सुरभि ऋतु
-ताओं ने रचाया यज्ञ जो
औ ग्रीष्म ईंधन शरत् हवि ॥६॥

त यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥ ८ ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

अग्रजन्मा मखपुरुष को
साध्य देवों और ऋषियों
दर्भ पर मन्त्रित किया
ने रचाया यज्ञ वह ॥७॥

सर्वहुत उस यज्ञ से
वायव्य पशु, जंगली तथा
दधियुक्त घृत पैदा हुआ
जो पालतू वे भी बने ॥८॥

सर्वहुत उस यज्ञ से ऋक्
पैदा उसी से छन्द, उससे
साम भी पैदा हुए
ही यजुष् पैदा हुआ ॥९॥

अश्व और दो दन्त-पंक्ति-
उससे हुई गौएं, उसी
-युक्त भी उससे हुए
से भेड़-बकरी भी हुईं ॥१०॥

जब पुरुष बांटा गया
क्या बना मुख क्या भुजा
कितने विभागों में बंटा ?
क्या थे उरु क्या पाद थे ? ॥११॥

मुख बना ब्राह्मण तथा
उरु बने थे वैश्य एवं
क्षत्रिय बनीं उसकी भुजा
शूद्र जन्मा पाद से ॥१२॥

चन्द्रमा मन से बना
अग्नि एवं इन्द्र मुख से
और चक्षुओं से रवि बना
प्राण से वायु बना ॥१३॥

नाभि से नभ शीर्ष से
पाद से भू, औ दिशायें
द्युलोक जन्मा पुरुष के
श्रोत्र से, यूं जग बना ॥१४॥

सप्त इसकी परिधियां
देवगण जब यज्ञ में
इक्कीस समिधायें बनीं
थे पुरुष-पशु को बांधते ॥१५॥

यज्ञ यज्ञ से किया देव-
वे महिमा को उपलब्ध, स्वर्ग
-वृन्दों ने, वे थे प्रथम धर्म
में गये जहाँ है पूर्व साध्य देवता ॥१६॥

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ १ ॥

प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ २ ॥

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥

नहि मे अक्षिपच्चनाऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥

मैं यह कर दूँ या यह कर दूँ
दे दूँ गायें एवं घोड़े
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥१॥

झझकोरे चण्ड प्रभंजन ज्यों
यह पिया हुआ करता प्रमत्त
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥२॥

यह पिया हुआ करता प्रमत्त
ज्यों करते रथ को तेज अश्व
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥३॥

मुझ तक आयी है स्तुति ऐसे
ज्यों प्रिय बछड़े के पास गौ
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥४॥

मैं दोहराता स्तुति मन ही मन
जैसे बढ़ई रन्दा फेरे
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥५॥

मेरी आंखों की दृष्टि से
बच सकी नहीं जातियाँ पाँच
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥६॥

यह भूमि और आकाश, उभय
मेरे एक पक्ष-समान नहीं
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥७॥

अभि द्यां महिना भुवमभीꣳमां पृथिवीं महीम् ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥

ओषमित् पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥१०॥

दिवि मे अन्यः पक्षोꣳऽधो अन्यमचीकृषम् ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥११॥

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥१२॥

गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥१३॥

मैं महिमा में नभ से ऊँचा
मैं महामहिम मही से महान्
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥८॥

रख दूँ पृथ्वी को यहाँ हन्त !
या रख दूँ पृथ्वी वहां हन्त !
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥९॥

जलती पृथ्वी को यहां रखूँ
या जलती पृथ्वी वहां रखूँ
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥१०॥

यह गगन पंख है एक मेरा
दूसरा किया मैंने नीचे
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥११॥

मैं महामहिम हूँ मुझे अभी
है गया उठाया अम्बर तक
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥१२॥

हवि लेकर मैं हूँ सजा हुआ
जा रहा देव-गण की हवि ले
मैं सोमपान कर बैठा हूँ ॥१३॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

प्रथम था प्रजापति, उत्पन्न-
धारता वही धरा आकाश

शक्तिदाता जो आत्मद सर्व
मृत्यु-अमृत हैं जिसकी छांव

श्वास-निश्वास निमेषोन्मेष-
दुपायों चौपायों का ईश

हैं जिसके महिमा से हिमवन्त
बनी हैं जिसकी बांहें दिशा

है जिससे उग्र द्यौ, दृढ़ धरा
मापता अन्तरिक्ष में लोक

-मात्र जो पति प्रजा का एक
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥१॥

देव जिसके आज्ञावशवर्ती
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥२॥

-युक्त जग का महिम प्रभु एक
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥३॥

हैं जिसके सरित-सहित जलनिधि
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥४॥

थामता जो प्रकाश औ स्वर्ग
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥५॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

टिके जिसकी रक्षा पर धरा-
-गगन देखते जिसे सामोद
है जिनके बीच उदित रविदीप्त
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥६॥

बृहत् जल आया धारे विश्व-
-गर्भ को अग्नि का जनक
उसी से जन्मा देव-प्राण
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥७॥

स्वमहिमा से जिसने मखजनक
दक्ष-धारक देखा जल स्वयम्
एक जो देवों में अधिदेव
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥८॥

हमें मत पीड़ा दे जो भूमि-
-सृजक ऋत-धर्मा द्यौ का जनक
बृहत् औ रम्य सलिल का जनक
सुखप्रद देव-हेतु दें हवि ॥९॥

प्रजापति ! न तेरे अतिरिक्त
प्राणियों को घेरे हैं अन्य
हमारे यज्ञ त्वदर्थक पूर्ण-
-काम हों हम धन के पति बने ॥१०॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रा वरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ ८ ॥

विचरण करती रुद्रवृन्द औ वसुवृन्द के साथ
मैं धारण करती मित्र-वरुण का द्वन्द्व

मैं विश्वदेव औ आदित्यों के संग विचरती
इन्द्र-अग्नि का युगल तथा अश्विनी-देव-द्वय ॥१॥

मैं त्वष्टा को, पूषा को, भग को अपरंच
मैं देती धन उस यजमान हविर्दाता को

शत्रु-विनाशक सोम-देव को करती धारण
जो अर्पित करता रस, रक्षा का अधिकारी ॥२॥

मैं सम्राज्ञी कोषों को करती एकत्रित
ऐसी मुझको देवों ने सर्वत्र रखा है

मैं विज्ञात्री यज्ञार्हों में अग्रगण्य हूँ
मैं अनेक स्थान-स्थ अनेकों में प्रविष्ट हूँ ॥३॥

जो खाता है अन्न, मुझ ही से, जो कोई भी
जो मुझको मानते नहीं वे मिट जाते हैं

देख रहा है, श्वास ले रहा, या सुनता है
हे श्रोता ! सुन मैं श्रद्धेय बताती तुझको ॥४॥

मैं मनुष्य और देवगणों द्वारा संसेवित
मैं जिसको चाहती उसे बलवान् बनाती

बात तुम्हें यह स्वयं आज बतला देती हूँ
उसे बनाती ब्राह्मण और ऋषि और मनीषी ॥५॥

मैं रुद्रार्थ खींचती धनुष मारने हेतु
मैं लोगों के लिये समद संग्राम रचाती

उन्हें कि जो ब्रह्म-द्वेषी घातक शत्रु हैं
मैं द्यावा-पृथिवी में हो जाती समाविष्ट ॥६॥

मैं उसकी मूर्धा में जन्म पिता को देती
मैं हो जाती व्याप्त जहां से निखिल भुवन में

मेरा जन्म-स्थान जलधि में जल के अन्दर
छू लेती हूँ निज काया से उस अम्बर को ॥७॥

जैसे बहती वायु उसी भांति मैं बहती
मैं पृथ्वी से परे, स्वर्ग से भी अतीत हूँ

निखिल भुवन को मैं ही रूप प्रदान कर रही
मैं महिमा-गौरव से इतनी विपुल-काय हूँ ॥८॥

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ २ ॥

न था तब असत् न था सद्-भाव
कहां ? किसके सुख हेतु ? कौन
न, लोक, व्योम, न व्योमातीत
आवरण ? जल था गहन गंभीर ? ॥१॥

न थी तब मृत्यु, न अमृत-भाव
एक निर्वात स्वधा से श्वसित
न दिन का और निशा का चिह्न
न था कुछ भी उसके अतिरिक्त ॥२॥

तमं आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

तमस् था तम से आवृत प्रथम
एक जो था तुच्छावृत आभु

जागृत प्रथम कामना हुई
हृदय में बुद्धि से कवि-वृन्द

वक्र फैली इनकी रश्मियां
बीजधारी थे महिमावन्त

कौन जाने ? कह सकता कौन ?
देव जन्मे सर्जन के बाद

हुआ जिससे यह जग उत्पन्न
परम नभ में इसका अध्यक्ष

सभी था सलिल-मात्र अज्ञेय
हुआ तप-महिमा से उत्पन्न ॥३॥

बनी जो मन का पहला बीज
असत् में खोज सके सद्-बन्धु ॥४॥

गई कुछ नीचे औ कुछ ऊर्ध्व
स्वधा निकृष्ट प्रयति उत्कृष्ट ॥५॥

कहां से जन्मा यह संसार ?
कहां से जन्मा, जाने कौन ? ॥६॥

धारता वह यदि, या यदि नहीं
जानता वह प्रिय ! या यदि नहीं ॥७॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ १ ॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्य१ याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

होती समिद्ध श्रद्धा से अग्नि
श्रद्धा से हवि दी जाती है
भग की मूर्धा पर श्रद्धा की
वाणी से हम स्तुति करते हैं ॥१॥

श्रद्धे ! दो इष्ट प्रदाता को
दो उसे इष्ट जो दित्सु है
दो इष्ट सुखेच्छुक याजक को
जो मैंने कहा करो पूरा ॥२॥

जैसे असुरों से होने पर
रण, देवों ने श्रद्धा की थी
वैसे सुखेच्छु याचक के प्रति
जो हमने कहा करो पूरा ॥३॥

यजमान, वायु से संरक्षित
देवता पूजते हैं श्रद्धा
सच्ची हार्दिक अभिलाषा से
श्रद्धा से धन पाता है जन ॥४॥

प्रातः हम श्रद्धा बुला रहे
श्रद्धा को ही मध्याह्न-काल
श्रद्धा को ही सूर्यास्त-समय
हे श्रद्धे ! दो विश्वास हमें ॥५॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ २ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ ३ ॥
ये चित् पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितॄन् तपस्वतो यमस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ ४ ॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ ५ ॥

सोम एक के लिये छानते
जिनके लिये मधु बहता है

जो अजेय है तप के कारण
किया जिन्होंने तप महान है

जो लड़ते हैं घमासान
या जो देते बहुत दक्षिणा

जो पूर्वज ऋत के अनुयायी
हे यम ! पितर तपस्वी हैं जो

कविगण नेता जो सहस्र के
हे यम ! ऋषि तपस्वी हैं जो

करते एक घृत स्वीकार
उनके भी तुम जाओ पास ॥१॥

तप के द्वारा स्वर्ग गये
उनके भी तुम जाओ पास ॥२॥

रण में शरीर तजते जो वीर
उनके भी तुम जाओ पास ॥३॥

ऋत-धारी ऋत-वर्धक हैं
उनके भी तुम जाओ पास ॥४॥

रक्षक सूर्य लोक के हैं
उनके भी तुम जाओ पास ॥५॥

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

चण्ड तप से उद्भूत
उससे उत्पन्न रात्रि

जलधि जलपूर्ण से
क्षण क्षण का स्वामी

स्रष्टा ने यथापूर्व
निर्मित आकाश भूमि

ऋत एवं सत्य-वाक्
उससे जलपूर्ण जलधि ॥१॥

संवत्सर जन्मा जो
निर्माता दिन-रात का ॥२॥

सूर्य-चन्द्रमा के बाद
अन्तरिक्ष स्वर्ग किये ॥३॥

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥

संज्ञान

संवनन (आङ्गिरस)

ऋ० १०, १९१

हे शक्तियुत अग्ने ! सभी से
तुम वेदि पर संदीप्त हो

हो साथ साथ गमन तथा
ज्यों एक-मन हो पूर्ववर्ती

मन्त्र होवे एक, समिति एक हो
सम-मन्त्र देता हूँ तुम्हें मैं

सम हों तुम्हारे भाव
मन हों तुम्हारे एक

तुम हुए संयुक्त हो
दो सम्पदा हमको प्रभो ! ॥१॥

संलाप, मन हो एकरस
देव निज यज्ञांश हैं पाते रहे ॥२॥

मन एक हो, हो चित्त एकाकार
सम-हवि तुम्हारी ले रचाता अर्चना मैं ॥३॥

हृदय अभिन्न हों
कि मिलजुल रहो ॥४॥